

ईसुरी

ISSN : 0976-5778

अंक 20, वर्ष 2015-16

संस्थापक संपादक

प्रो. कान्ति कुमार जैन

संरक्षक

कुलपति, प्रो. आर.पी. तिवारी

परामर्शदाता

कुलसचिव प्रो. निवेदिता मैत्रा

प्रधान संपादक

प्रो. चन्दा बैन

संपादक

राजेन्द्र यादव

प्रकाशक

हिन्दी विभाग,

DEPARTMENT OF HINDI

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

DOCTOR HARISINGH GOUR

VISHWAVIDYALAYA, SAGAR (M.P.)

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय A CENTRAL UNIVERSITY)

संपादक मण्डल-

प्रो. वीरेन्द्र मोहन

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

प्रो. अखिलेश्वर प्रसाद दुबे

प्रो. आर.के. त्रिवेदी

प्रो. जी.एल. पुणतांबेकर

प्रो. नागेश दुबे

प्रो. अशोक अहिरवार

प्रो. नरेन्द्र सिंह

डॉ. पंकज चतुर्वेदी

डॉ. अमरेन्द्र त्रिपाठी

डॉ. हिमांशु कुमार

डॉ. अरविन्द कुमार

डॉ. मनीष कुमार

डॉ. अफरोज बेगम

श्री सतीश कुमार

श्री विवेक विसारिया

वह कहीं नहीं गया पुरानी सदरी पहीनकर विचार की तरह (रमेशदत्त दुबे के लिए विनोदकुमार शुक्ल से क्षमा-याचना के साथ)

आशुतोष*

सम्माननीय रमेशदत्त दुबे जी

पहली और आखिरी बार आपको एक खत लिख रहा हूँ। पहली बार इसलिए कि कभी खत में बात करने की जरूरत नहीं पड़ी, आप इतने पास जो थे, और आखिरी बार इसलिए लिख रहा हूँ कि मैं जानता हूँ कि आपकी ओर से इस खत का कोई जवाब नहीं आयेगा, आप इतने दूर जो चले गए। पर कितने दूर यह मैं नहीं जानता। वैसे खतों को दूरियाँ नहीं गलत पते हैरान करते हैं। थोड़ा हौसला करूँ तो आसमान के दोनों जहाँ जन्नत या जहन्नुम के नाम इस खत को रवाना कर सकता हूँ, पर आप तो आप ठहरे, जाने कहाँ होंगे। पर इतना तय है कि जहाँ भी होंगे वहाँ के समस्त वैभव की ओर पीठ कर जन्नत के पड़ोस के टपरे पर बैठकर चाय सुड़क रहे होंगे। वैसे भी आपको किसी आसमानी जन्नत या जहन्नुम पर यकीन कब और कहाँ रहा। आपको भी तो मालूम ही था 'जन्नत की हकीकत'। आपके लिए जब जन्नत यूँ जन्नत नहीं था तो जहन्नुम की विसात ही क्या है। वैसे भी जन्नत और जहन्नुम आपके लिए कोई आसमानी हिस्से नहीं, इसी धरती के, इसी मूलक के, इसी शहर के और तो और आपके ही 'टोले' के दो स्थिर, जड़ बॉयनरी अपोजिशन थे। सुख से अटा पड़ा जन्नत और दुःख में डूबा हुआ जहन्नुम आपको कभी स्वीकार नहीं थे।

हे कवि! आपकी भाषा में कहूँ तो धरती और

आसमान इस कायनात के दो टोले हैं। आपको यह जानकारी हैरानी होगी कि हर टोला और अधिक छोटे-छोटे टोले में बँटता जा रहा है। जाति, धर्म, राजनीति और अर्थ के साथ-साथ ही और भी न जाने कितने-कितने आधारों पर यह बंटवारा होता ही जा रहा है। गोया यह कि एक होने की कोई सुरत नजर नहीं आती, अलग हो जाने की जिद हमारे समय का सबसे लोकप्रिय मुहावरा बन गया है। जिस तरह के विभाजनों का आप मुहालफत करते रहे उम्र भर, वैसे विभाजन आपके बाद आपके 'टोले' के सबसे बड़े सच बन गए हैं।

मैंने कभी आपसे रूबरू इतनी बात नहीं की थी। इसलिए गुप्तगू खत के मारिफत ही सही। पर इस गुप्तगू की एक मुश्किल यह है कि आपको किस संज्ञा से संबोधित करूँ। सागर शहर आपके पहले भी आबाद था और आपके बाद भी बरबाद नहीं हुआ है। पर 1940 से लेकर 2013 के बीच इस शहर के बदन पर आपकी खुशबू की एक चादर भी तो थी। उसी चादर की एक छोर से कुछ साल पहले मैं आपको शहर में दाखिल हो गया था। मैं अपने बारे में क्या कहूँ? इतनी कम उम्र में घर से निकला था कि घर के किसी भौगोलिक अस्तित्व से मेरा कभी लगाव नहीं रहा। इतने शहरों में इतनी बार आया—गया, रहा—बसा कि घर शब्द सुनते ही चेतना के बहुतेरे छोरों से बहुत सारे शहरों और बहुत सारे घरों की याद आती है। वैसे ही मेरे

* सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003 मोबाइल : 09479398591

आशुतोष